08 कलाओं की परिवर्तनकारी ताकत

fFk;Vj vkj ml lEc) dykvk dk dUæ e j[krs g,

संजना कपूर

मैं यह सोच कर अचम्भित होती हूँ कि दस दिन भी नहीं गुजरते और मुझे मेरे नाना–नानी, ज्यॉफ्री तथा लॉरा केण्डल और उनकी शेक्सपियरियाना नामक थियेटर कम्पनी को बहुत ही प्यार और लगाव से याद करने वाला कोई न कोई मिल ही जाता है। यह कम्पनी हर साल देश भर के विभिन्न स्कूलों में जाकर शेक्सपियर, बर्नार्ड शॉ तथा अन्य समकालीन नाटककारों के जादू से स्कूल–कॉलेज के बच्चों का परिचय करवाती थी। इन अभिनय–प्रदर्शनों ने अँग्रेजी–माध्यम स्कूलों के बच्चों की एक पूरी पीढ़ी पर अमिट छाप छोड़ी थी। यह 1950 और 1960 के दशक की बात है। ज्यॉफ्री केण्डल की पुस्तक 'द शेक्सपियरवाला' को उद्धृत करूँ तो उनके मुताबिक, "हम खुद को संसार के सबसे ज्यादा सुकून देने वाले दर्शकों के बीच पाते थे; भारत की सचेत, ज्ञानशील छात्राओं की कतारों पर कतारें नाटक को अचम्भे में डूबकर देखती थीं–एक–एक शब्द, एक–एक संकेत को अन्दर तक जज्ब करते हुए।"

मैं या तो शेक्सपियर के नाटकों की कहानियों या फिर पूरे भारत में अपने नाना–नानी के अभूतपूर्व अनुभवों और यात्राओं की कहानियाँ सुनते हुए बड़ी हुई। इन कहानियों में हमेशा देश की उत्कृष्ट शैक्षिक संस्थाओं का नेतृत्व करने वाले मुख्याध्यापकों से हुई मुलाकातों का जिक्र होता था।

मैं बम्बई में एक ऐसे स्कूल में पढ़ती थी जो अपने समय के हिसाब से अद्वितीय था–वहाँ कोई प्रतियोगिताएँ नहीं होती थीं, कक्षा छह से पहले कोई इम्तिहान नहीं होते थे, प्रत्येक बच्चे को एक अलग व्यक्ति के रूप में देखा जाता था न कि किसी ऐसी ट्रॉफी की तरह जिसे 12 साल की शिक्षा के अन्त पर स्कूल उठाकर दिखाना चाहे। मैं बहुत खुशकिस्मत थी कि स्कूल मेरी कमियों और सीमाओं को समझता था, और मुझमें मौजूद सम्भावनाओं को भी। उसने मुझे बदलने की कोशिश नहीं की, बल्कि मुझे खुद पर छोड़ दिया था।

कक्षा नौ में मुझे गणित से सम्बद्ध एक असाधारण अनुभव हुआ जिसने मेरे जीवन और मेरे आत्म–सम्मान में बदलाव ला दिया। यह एक अलग ही कहानी है। मगर मेरा मानना है कि इसकी वजह से मुझमें शिक्षा के प्रति गहरी दिलचस्पी जागी, खासतौर पर इस बात में कि कलाएँ एक बच्चे के लिए क्या कर सकती हैं।

बाईस साल पहले मैंने पृथ्वी थियेटर के तहत एक कार्यक्रम की शुरुआत की थी, जो अब बड़ा आकार ले चुका है –*समरटाइम विद पृथ्वी थियेटर,* बच्चों के लिए रचनात्मक कार्यशालाएँ और नाटक। अब यह कार्यक्रम *जुनून* नाम की नई संस्था के तहत होता है और *आर्ट्स एट प्ले* के नाम से जाना जाता है।

इस कार्यक्रम का उद्देश्य बहुत स्पष्ट था–थियेटर के लिए कदरदाँ और विवेकपूर्ण दर्शक विकसित करना; बच्चों के मन में थियेटर के लिए प्रेम जगाना। और इसी से निकलने वाले प्रभावों में बच्चों के विकास से प्राप्त होने वाले लाभ और उनके व्यक्तित्व पर पड़ने वाले असर थे। लेकिन यह हमारे उद्देश्यों के केन्द्र में नहीं था।

अब *आर्ट्स एट* प्ले में हमारे उद्देश्यों के केन्द्र में है कि हम अपने जीवन में कलाओं के महत्त्व का विकास करें। इसलिए बच्चों के साथ सम्पर्क और सम्बन्ध में आना तथा उनके लिए निर्णय लेने वालों यानी उनके माँ–बाप और स्कूलों के साथ रिश्ता बनाना हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं इस लेख में इसकी गहराई में नहीं जाऊँगी कि हम यह कैसे करेंगे–लेकिन इस बारे में हमने कुछ बातें सोची जरूर हैं!

मैं यह पृष्ठभूमि इसलिए बना रही हूँ क्योंकि मेरे ख्याल

से यह जानना आवश्यक है कि जब मैं शिक्षा में कलाओं के बारे में अपने पक्के विश्वास और मान्यताओं की बात करती हूँ तो मैं असल में कहाँ खड़ी हूँ।

हम क्यों मानते हैं कि कलाएँ बच्चे की शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, क्या चीज है जिसे वे आगे लाती हैं?—मेरे विचार से इस बात की अभिव्यक्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण, बहुत आवश्यक है। यह कैसे हो और इसे कर पाने के लिए क्या जरूरी है?

> *"एक सौन्दर्यबोधी अनुभव में आपकी इन्द्रियाँ अपने चरम पर काम कर रही होती हैं, आप मौजूदा लम्हे में होते हैं, हो रहे अनुभव के रोमांच और उत्तेजना की अनुगूँज को महसूस करते हैं, और पूरी तरह जीवन्त होते हैं।"*
> *–केन रोबिन्सन*

अँग्रेज गणितज्ञ और दार्शनिक अल्फ्रेड नॉर्थ व्हाइट्हेड के मुताबिक, *"कला का अर्थ है अनुभव या अनुभूति पर एक पैटर्न, एक बुनावट का अंकित होना; और उस पैटर्न का बोध, उसकी पहचान, हमें प्राप्त होने वाला सौन्दर्यबोधी आनन्द है।"*

पहले से कहीं अधिक आज, सौन्दर्यानुभूति से यह सामना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और निर्णायक है; उतना ही, जितना खुशी—खुशी में शिक्षा के साथ सम्बन्ध।

हमारा यह विश्वास क्यों है कि कलाओं का अनुभव या उनकी कद्र और समझ से बच्चे के जीवन में कोई फर्क पड़ेगा?

कलाओं में परिवर्तनकारी शक्तियाँ हैं। खासतौर से मंच—कलाओं में अलग या नए परिप्रेक्ष्यों की खिड़कियाँ खोलने की क्षमता है, अनुभवगम्य ज्ञानार्जन में पूरी तरह तल्लीन कर देने की क्षमता है। एक अधिक समग्र, अधिक सम्पूर्ण व्यक्ति के तौर पर विकसित होने के लिए इन्हीं शक्तियों को प्रयोग में लाने की जरूरत है। यह बहुत ही भयावह बात है कि आज के संसार में लगातार निकलकर आ रहे विशेषज्ञों में इस दुनिया की समझ, उसमें दिलचस्पी या उसके साथ व्यापक स्तर पर सम्बद्ध होने की बात दिखाई नहीं देती। स्टीव जॉब्स ने एक बार कहा था, "हमारे उद्योग में बहुत लोग हैं जिनके पास अनुभवों की विविधता नहीं है। इसीलिए उनके पास जोड़ने को अधिक बिन्दु भी नहीं हैं और वे समस्या के व्यापक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में लिए बिना एकरेखीय समाधानों तक ही पहुँच पाते हैं। मानव—अनुभव की जितनी व्यापक और वृहत समझ हमारे पास होगी उतना ही बेहतर हमारा डिजाइन होगा।"

एकरेखीय तरीके से हटकर इस प्रकार सोचने में, कल्पना की जोत जलाने में, कलाएँ योगदान दे सकती हैं। अल्बर्ट आइंस्टाइन ने कहा था, *"कल्पना ज्ञान से अधिक महत्त्वपूर्ण है...."* और *"जिज्ञासा का औपचारिक शिक्षा से बचे रह जाना एक चमत्कार ही है!!!"*

हम कला का यह संसार बच्चों तक औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से ला सकते हैं।

मेरा मानना है कि दोनों तरह के मौके हमारे लिए उपलब्ध और हमारी पहुँच में होने चाहिए—शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत औपचारिक ढाँचे और उसके बाहर के सार्वजनिक ढाँचे। दोनों से स्पष्ट अपेक्षा यह है कि वे कलाओं से जान—पहचान बढ़ाएँगे तथा उनका तजुर्बा करवाएँगे।

हमारे युवाओं के लिए कलाओं से सम्बद्ध होने के इन दो अलग तरीकों को—यानी शिक्षा के ढाँचे के अन्दर रहते हुए और सार्वजनिक क्षेत्र में—कैसे स्थापित किया जाए?

कुछ साल हुए मुझे एन.सी.ई.आर.टी. की एक बैठक में आमंत्रित किया गया। मौका स्कूलों में थियेटर के पाठ्यक्रम पर चर्चा का था क्योंकि हाल ही में पहली बार थियेटर को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया गया था। यह अब तक की मेरी सबसे अव्यवस्थित बैठक कही जा सकती है। सबसे

अधिक चौंकाने वाली बात यह थी कि विशेष आयु–समूहों पर चर्चा करने वाले विभिन्न समूहों का आपस में बिल्कुल सामंजस्य और तालमेल नहीं था। ऐसे किसी दर्शन, सोच या नजरिए पर एक राय नहीं बन पाई, निर्णय नहीं हो पाया, जिसे एक छतरी की तरह सब आयु–समूहों के लिए काम में लाया जा सके। हम आज भी इस पाठ्यक्रम के इन्तजार में हैं।

लेकिन इस विचार के केन्द्र में कुछ तो है जो हमें बहुत ही गलत लगता है। एक स्कूल यदि कला–अध्यापक या संगीत–अध्यापक को नियुक्त करता है तो आप यह तो देख ही सकते हैं कि वे चित्रकारी कर सकते हैं या नहीं, रेखा–चित्र बना सकते हैं या नहीं–कोई वाद्य–यन्त्र बजा सकते हैं कि नहीं। लेकिन इतने से ही यह गारण्टी नहीं मिल जाती कि उनमें उत्साह और उमंग पैदा करने की, अपने विषयों में रुचि जगा पाने की योग्यता और क्षमता भी है। जब एक स्कूल किसी ड्रामा अध्यापक को नियुक्त करता है तो उसमें किस चीज की तलाश करता है? और यह व्यक्ति कहाँ प्रशिक्षित होता है?

मेरा मानना है कि कला–शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया जाना चाहिए–ड्रामा, कला, संगीत और साहित्य में भी!

और लगातार इस बात से पुन: सम्बन्ध भी बनाया जाता रहे कि हम स्कूलों में कला की जरूरत क्यों समझते हैं? अगर हम इस बारे में स्पष्ट हैं कि कलाएँ बच्चे की रचनात्मकता, खोजी प्रवृत्ति, नवाचार का विकास करें और इसके माध्यम से उसका आत्मविश्वास और आत्म–सम्मान बढ़े, उसकी विश्वदृष्टि व्यापक हो, तो हमारे काम करने का तरीका अलग होगा। लेकिन अगर हम चाहते हैं कि बच्चा स्कूल में होने वाले प्रत्येक कार्यक्रम में मंच पर दिखे, और स्कूल के लिए वाहवाही लूटने के लिए हर प्रतियोगिता का हिस्सा बने, तब हमारा नजरिया बिल्कुल ही अलग होगा–और यह खेद वाली बात होगी।

जाहिर है, मैं तो पहले नजरिए के हक में हूँ।

शिक्षण–संस्थाओं में प्रशिक्षित कला–शिक्षकों के साथ–साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चों का सम्पर्क और परिचय व्यावसायिक कलाओं से भी हो–स्कूल में भी और बाहर भी।

बहुत से देशों में स्कूलों के लिए आवश्यक है कि वे बच्चों को हर माह थियेटर लेकर जाएँ। इसी तरह राज्य से वित्त–प्राप्त थियेटर–समूहों को भी एक न्यूनतम संख्या में बच्चों के लिए अपने प्रदर्शन करने होते हैं। यह सरकार की नीति का हिस्सा होता है। ऐसे देश भी हैं जहाँ हर मोहल्ले में थियेटर, गैलरी और बच्चों का थियेटर भी होता है।

मैं आपके साथ तीन प्रेरणादायक कहानियाँ साझा करना चाहूँगी (और वे सभी दक्षिणी गोलार्द्ध की हैं)।

दक्षिणी अफ्रीका में ब्रेन्ट वान रेन्सेन्बर्ग तथा लॉरेंस एस्टीअर्स की *जिप जैप सर्कस*। 20 साल पहले शुरू हुए इस सर्कस ने सुनिश्चित किया कि केपटाउन के एक बहुत ही बेअदब, बेतहजीब मोहल्ले के बच्चे नशे के उद्देश्य से गोंद सूंघने और जुर्म की दुनिया से दूर रहें। यह काम भरोसा, ईमानदारी, जिम्मेदारी, अनुशासन, समूह–भावना जैसे जीवन–कौशलों के माध्यम से बढ़ा। इस सबने मोहल्ले के माहौल पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। *जिप जैप* नियमित तौर पर प्रदर्शन करता है। आज *जिप जैप* के कई भूतपूर्व विद्यार्थी जानी–मानी, प्रशंसा के काबिल *सर्क डु सोलिएल* के लिए प्रदर्शन करते हैं।

वेनेजुएला के *एल सिस्टेमा* की शुरुआत करीब 35 साल पहले संगीतज्ञ होसे अब्रो द्वारा की गई–झुग्गी बस्तियों के बच्चों को संगीत सिखाने के लिए। *एल सिस्टेमा* ने हजारों बच्चों के जीवन को छुआ है और बच्चों में ही नहीं, उनके माता–पिता में भी आत्म–सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना

> *“संस्कृति मन और आत्मा को विस्तार देती है।*
> *– जवाहरलाल नेहरु”*

पैदा की है। यह कार्यक्रम एक व्यक्ति द्वारा शुरू किया गया था मगर अब इसे सरकार की भी मदद मिलती है। आज ये संगीतज्ञ उन संगीतज्ञों में हैं जिन्हें संसार के सिम्फनी ऑर्केस्ट्राज अपना हिस्सा बनाने के लिए लालायित रहते हैं।

ब्राजील के एस.ई.एस.सी.,सामुदायिक सांस्कृतिक और खेल केन्द्र 60 साल से भी अधिक पहले कारोबारी समुदाय द्वारा शुरू किए गए थे। उनके लिए यह सुनिश्चित करना जरूरी था कि उनके यहाँ काम करने वालों को, जिनमें अधिकांश दुनिया भर से आए हुए प्रवासी थे, आत्मा की तृप्ति के लिए भी कुछ मिले! कारोबारी प्रतिष्ठानों ने सांस्कृतिक केन्द्रों की इस व्यवस्था को विकसित करने के लिए अपने कर्मचारियों से उनके वेतन पर 1.5 प्रतिशत का कर लगाना तय किया। इससे सम्भव हो पाया कि कर्मचारी उपलब्ध सुविधाओं का मुफ्त प्रयोग कर सकें, जबकि गैर–कर्मचारियों के लिए थोड़ा सा शुल्क रखा गया। इस व्यवस्था को ब्राजील के संविधान में ही स्थान दे दिया गया और आज भी यह कानूनन अनिवार्य है। एस.ई.एस.सी.के क्षेत्रीय निदेशक दानिलो मिराण्डा का कहना है, "एस.ई.एस.सी. एक सांस्कृतिक या खेल सम्बन्धी संस्था ही नहीं है, यह एक सामाजिक कल्याण की संस्था है जो लोगों के विकास और जीवन की गुणवत्ता में बेहतरी लाने के लिए हर सम्भव रणनीति का इस्तेमाल करती है। कल्याणकारी योजनाओं की बुनियाद ही इन्सान को महत्व और मूल्य देने पर है जो बराबरी के एक मानदण्ड के अन्तर्गत आदर का हकदार है। यह धर्म या राजनीति का विषय नहीं बल्कि संस्कृति की बात है। सांस्कृतिक नजरिए से हम सब बुनियादी तौर पर समान और बराबर हैं।"

साओ पओलो की जनसंख्या 3 करोड़ है और वहाँ पूरे शहर में 30 एस.ई.एस.सी. प्रोजेक्ट हैं और उनमें लोगों का आना इस प्रकार है :

- थियेटर: 3,968 (807,000 लोग)
- संगीत प्रोग्राम: 405 (2,150,000 लोग)
- नृत्य: 656 (610,000 लोग)

क्या आप भारत में किसी ऐसे समय की कल्पना कर सकते हैं जब हमारा कारोबारी समुदाय सांस्कृतिक–सामुदायिक स्थानों के विकास में बुनियादी तौर पर योगदान दे– अपने विज्ञापन के लिए या कारोबारी सामाजिक दायित्व के रूप में नहीं, बल्कि केवल इस विश्वास के आधार पर कि ऐसे स्थान जीवन की गुणवत्ता पर एक खास प्रभाव डालते हैं।

जैसा कि स्टीव जॉब्स ने कहा था: "अकेली प्रौद्योगिकी ही काफी नहीं है। प्रौद्योगिकी स्वतंत्र कलाओं और मानविकी के साथ जुड़कर आती है तो वे नतीजे प्राप्त होते हैं जिनसे हमारे दिल गुनगुनाने लगते हैं।"

गुनगुनाते दिलों से भरे संसार की अपेक्षा में !

"मानव इसलिए अद्वितीय नहीं है क्योंकि वह विज्ञान जानता और प्रयोग में लाता है, और इसलिए भी नहीं कि वह कला करता है, लेकिन इसलिए कि कला और विज्ञान दोनों ही बराबर तौर पर उसके दिमाग के कमाल के लचीलेपन की अभिव्यक्तियाँ हैं।" – जैकब ब्रनोवास्की वैज्ञानिक, पूर्व में साल्क इंस्टीट्यूट में कार्यरत।

***संजना** 1990 से पृथ्वी थियेटर का नेतृत्व कर रही हैं। मुम्बई के थियेटर समूहों से नए तरह के काम की मांग करके उनके लिए चुनौती खड़ी करती रही हैं। वे थियेटर उत्सवों में जाती हैं, मुम्बई के अन्य स्थानों पर थियेटर की प्रस्तुति करती हैं। उन्होंने बच्चों के लिए, उन तक कलाएँ पहुँचाने के कार्यक्रम की शुरुआत भी की। उन्होंने कविता, विज्ञान, डॉक्युमेन्ट्री तथा लघु फिल्मों आदि को पृथ्वी थियेटर के कैलेण्डर में स्थान दिया। युवा और स्थापित कलाकारों को प्रस्तुत करने के लिए आर्ट गैलरी चलाकर पृथ्वी थियेटर को और भी व्यापक रूप दिया। हाल ही में उन्होंने रंगकर्मियों के लिए अखिल भारतीय नेटवर्क, इण्डिया थियेटर फोरम की भी शुरुआत की। वे जुनून की भी निदेशक हैं। जुनून उनके लिए एक ऐसा मंच है जहाँ वे थियेटर के अपने नवाचारी प्रयोगों को लोगों तक पहुँचाती हैं। **अनुवादः** रमणीक मोहन*